International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 432-434

परमार काल में स्त्रियों की दशा : एक अध्ययन

धर्मबीर
शोधार्थी, इतिहास विभाग, मदवि, रोहतक, हरियाणा, भारत।

सांराश
प्राचीन भारत में अगर हम देखें तो नारी की दशा कुछ एक राजकालों को छोड़कर सोचनीय रही है। परमार काल में स्त्री की दशा अच्छी नहीं थी, फिर भी कुछ सभ्रान्त घराने की स्त्रियों की दशा ठीक थी। हालांकि इस काल के अभिलेखीय साक्ष्यों में स्त्रियों की दशा तथा उनकी स्थिति के बारे में विशेष उल्लेख नहीं है। कुछ अभिलेखों में महिषियों के उल्लेख मिलते हैं। अतः इस शोध पत्र में हम परमार कालीन स्त्रियों के बारे में जानेंगे। इस शोध पत्र में इस काल की स्त्रियों के विवाह की आयु, सती प्रथा, बहुविवाह, शिक्षा, वस्त्राभूषण तथा प्रसाधन के बारे में जानेंगे।

मुख्य शब्द : महिषि, पितृऋण, गणिका, सती प्रथा, बहुविवाह, स्वयंवर।

प्रस्तावना
परमार कालीन साक्ष्यों में स्त्रियों के बारे में तथा उनकी स्थिति के बारे में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। कुछ अभिलेखों में महिषियों के उल्लेख मिलते हैं। परन्तु केवल दो महिषियां ही अपने अधिकार से जन कल्याण के कार्य सम्पन्न करवाती है। आबु नरेश पूर्णपाल की बहन रानी लाहिनी ने सूर्यदेव के मन्दिर की मरम्मत करवाई तथा 1042 ई. में वटपुर में एक तालाब खुदवाया था। आबु नरेश धारावर्ष की साम्राज्ञी श्रृंगारदेवी ने 1183 ई. में अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत जैन तीर्थंकर शान्तिनाथ के मन्दिर के लाभ हेतु भूदान किया था।[1]

परन्तु हमें परमार काल में किसी महिषि द्वारा साम्राज्य पर अथवा उसके कुछ भूभाग पर शासन करने अथवा संरक्षिका के रूप में कार्य करने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। महिषियां सदा ही अन्तःपुर में निवास करती थी, जिनकी रक्षा प्रायः हिजड़े करते थे।[2] परमार कालीन साहित्यिक ग्रन्थों में प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। फिर भी कन्या के जन्म को स्वागत योग्य नहीं माना जाता था। 'श्रृंगारमंजरीकथा' के अनुसार पुत्र के बिना कोई व्यक्ति पितृऋण से मुक्त नहीं हो सकता था।[3]

तिलकमंजरी के अनुसार पुत्र का जन्म प्रायः उत्सव के रूप में मनाया जाता था। पति–पत्नी दोनों पुत्र प्राप्ति हेतु देव पूजा करते थे। पुत्री जन्म माता–पिता के लिए चिंता लेकर आता था, तथा यह चिन्ता पुत्री के विवाह योग्य होने पर और अधिक हो जाती थी।[4] 'कथासरितासागर' में लिखा है कि पुत्र सुख का तथा पुत्री दुःख का प्रतीक है।[5] उच्च वर्ग की कन्याओं को कुछ शिक्षा दी जाती थी। इसमें नृत्य, संगीत तथा विविध ललितकलाएं भी सम्मिलित होती थी। परन्तु निम्न जातियों की कन्याएं प्रायः अनपढ़ रह जाती थी। ये कन्यासएं अशिक्षित रहते हुए भी धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवचनों को सुनने के अवसर सदैव प्राप्त कर लेती थीं। कुछ युवतियां तो अपने स्वयं के प्रयत्न से अत्यन्त सक्षम हो जाती थीं।[6] ऐसे उदाहरण में उज्जैन में शैव मठ की अध्यक्षा योगेश्वरी नामक विदुषी को लिया जा सकता है। कवयित्री सीता संभवतः नरेश भोजदेव की राजसभा में थी।[7] नरेश उदयादित्य के शासनकाल में उत्कीर्ण झालरापाटन अभिलेख के अनुसार वह जनक तेली की माता पण्डिता हर्षुक द्वारा रचा गया था।

परमार काल में साम्राज्य में कुछ विशिष्ट प्रकार की नर्तकियां होती थीं। इनकी स्थिति सामान्य स्त्रियों से भिन्न थी। इन नर्तकियों को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। उनका सानिध्य नरेशों, सामन्तों, श्रेष्ठियों को इच्छित होता था। 'श्रृंगारमंजरी कथा' ग्रन्थ समाज के इसी उच्च वर्ग से संबंधित है। यह ग्रन्थ नरेश भोज द्वारा रचा गया है। इसमें भोज ने एक नर्तकी को चौसठ कलाओं का ज्ञाता बताया है। इन कलाओं में गायन, नृत्य, चित्रकला, स्वयं के सौन्दर्य में वृद्धि करने की कला, आनन्ददायक क्रियाएं, बौद्धिक प्रवृत्तियां जैसे ग्रंथवाचन, काव्य समस्या पूर्ति तथा कामसूत्र से संबंधित अनेक प्रवृत्तियां सम्मिलित थी। 'श्रृंगारमंजरी' की नायिका उच्च श्रेणी की एक नर्तकी थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं कायस्थ सभी प्रकार के अधिकारी उसके द्वार पर उपहारों समेत उसको भेंट करने की इच्छा करते थे।[8] ऐसी विशिष्ट गणिकाएं समाज के अत्यन्त प्रतिष्ठित वर्ग को प्रभावित करती थी।

विवाह से पूर्व कन्याएं अपने माता–पिता के संरक्षण में रहती थी। उनके जीवन का अगला चरण विवाह के उपरान्त शुरू होता था। स्मृति ग्रन्थों में प्रपिण्ड तथा सगोत्र विवाह पर प्रतिबन्ध था। विवाह प्रायः कन्या के घर पर ही सम्पन्न होता था। विवाह में वर की जाति, गोत्र, शिक्षा आयु, चरित्र, धन, सम्पन्नता तथा जन्म प्रमुख विचारणीय तथ्य होते थे।[9] उस काल में दहेज में धनसम्पत्ति देने की प्रथा प्रचलित थी।[10] प्रेम विवाह भी प्रचलित थे। नरेश सिन्धुराज ने नाग राजकुमारी शशिप्रभा से प्रेम विवाह किया था। यदि हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रय महाकाव्य तथा जयानक कृत पृथ्वीराज विजय ग्रन्थों के साक्ष्यों को स्वीकार किया जाए तो कहना होगा कि स्वयंवर विवाह भी प्रचलित थे।[11] परन्तु पिता की जिम्मेदारी कन्या के लिए अच्छा वर ढूंढने की होती थी। 'तिलकमंजरी' से ज्ञात होता है कि एक प्रेमी युगल जो एक दूसरे से अथाह प्रेम करते थे, फिर भी विवाह हेतु अपने माता–पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हैं।[12]

राजवंशों की राजकुमारियां कभी–कभी शत्रु नरेशों के आपसी मतभेद दूर कर शान्ति स्थापना में प्रयुक्त की जाती थी। लेखक धनपाल ने इस प्रकार के राजकीय झगड़े का अन्त करने हेतु वैवाहिक संबंधों

की स्थापना पर जोर दिया है। संभवतः इसी ध्येय के अंतर्गत परमार नरेश उदयादित्य की पुत्री श्यामलदेवी का विवाह मेवाड़ के गुहिल नरेश विजयसिंह से सम्पन्न हुआ था।[13] राजकुमार जगदेव ने अपनी पुत्री मालवा देवी का विवाह पूर्वी बंगाल के नरेश सामलवर्मन के साथ किया था।[14] गंगवशीय नरेश नरसिंह ने एक मालव नरेश की कन्या से विवाह किया था।[15]

कन्याओं के विवाह की आयु के बारे में परमार अभिलेखों से कोई सीधा उल्लेख नहीं मिलता। स्वयंवर तथा प्रेम विवाहों के कुछ प्रसंगों को छोड़कर प्रतीत होता है कि सामान्यतः स्मृति ग्रन्थों के अनुसर आचरण किया जता था। मेधातिथि के अनुसार कन्याका विवाह आठवें वर्ष में होना श्रेष्ठ है। अलबेरूनी भी लिखता है कि हिन्दु लोग काफी छोटी आयु में कन्याओं का विवाह करते थे।[16] सोमदेव ने कन्या के विवाह की आयु 12 वर्ष बताई है। कभी–कभी तो जन्म सेपूर्व ही लोग बच्चों का विवाह निश्चित कर देते थे।[17] इस युग में अनुलोम विवाह प्रायः बन्द हो चले थे।[18] यहां तक कि दूसरे धर्मों में विवाह अच्छा नहीं माना जाता था। विवाह के साथ कन्या के जीवन का दूसरा चरण प्रारम्भ होता था। अब स्त्री के लिए पति ही उसका सब कुछ होता था। विवाह एक अटूट बन्धन होता था। प्रत्येक समुदाय में स्त्री पूर्णतः पति पर निर्भर मानी गई है।[19]

हालांकि परमार कालीन साक्ष्यों से सती प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी परमार राजपूत थे और राजपूतों में यह प्रथा इस काल में प्रचलित थी[20] तो परमारों में भी यह प्रथा प्रचलित रही होगी। परन्तु ऐसी विधवाएं जो सती नहीं होती थीं, वे अपने पुरुष संबंधियों की देखरेख में जीवन व्यतीत करती थी, जिस प्रकार परमार नरेश पूर्णपाल की विधवा बहन रानी लाहिनी अपने भाई के संरक्षण में जीवन निर्वाह कर रही थी।[21]

इस काल में स्त्रियों को एक अन्य बुराई का सामना करना पड़ता था और वह थी बहुविवाह प्रथा। नरेश अर्जुन ने गुजरात तथा कुन्तल की राजकुमारियों से विवाह किया था। आबु नरेश धारावर्ष की एक से जयादा महिषियां थीं। नरेशों के देखा–देखी सामन्त, माण्डलीक सभासद भी अपने रनवासे में रखैलों तथा दासियों को रखते थे। तिजकमंजरी में उल्लेख है कि स्वामी के शव के साथ दासियां चिता में जल जाती थीं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस काल में उत्तरी भारत में बहुविवाह प्रथा और सती प्रथा भी प्रचलित थी।[22]

इस प्रकार वास्तव में परमार समाज में एक गृहस्वामी की अपेक्षा स्त्री की दशा दयनीय थी। स्त्रियों के कार्य को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। ऐसा विचार था कि स्त्रियां ख्याति, धन तथा सन्तान के लिए ही विवाह करती हैं।[23] स्त्री के बारे में विचारधारा थी कि उनका मन चंचल होता है। वह नीच श्रेणी के व्यक्ति से भी प्यार कर सकती है। सोमदेव के अनुसार स्त्री के कर्तव्य गृहकार्य तथा बच्चों का पालन पोषण होना चाहिए। इसी काल में वह अर्धांगिनी की गई, उसके बगैर यज्ञ संस्कार आदि सम्पन्न हो सकते थे। पुरुष का आध्यात्मिक तथा सांसारिक जीवन पूर्ण हो सकता था।[24] जैन धर्म में श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ही स्त्रीयों के मुक्ति द्वार खुले थे। जैन विद्वान प्रभाचन्द्र के अनुसार स्त्री मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकती। स्त्रियों को सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त नहीं था। उसको केवल स्त्री धन रखने का अधिकार था। उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति राज्य द्वारा जब्त कर ली जाती थी।[25]

माता के रूप में स्त्री का बहुत अधिक आदर सम्मान था। परमार नरेश यशोवर्मन ने संवत् 1192 तदनुसार 1135 ई. में अपनी माता मोमल देवी की वार्षिकी के अवसर पर भूदान प्रदान कर ताम्रपत्र प्रसारित किया था।[26] स्त्रियों को शारीरिक रूप से दण्डित नहीं किया जा सकता था, वे केवल राज्य से निष्कासित की जा सकती थीं।[27]

परमारकालीन स्त्रियों द्वारा प्रयोग में लाये गये वस्त्र–आभूषण तथा प्रसाधन सामग्रियों के विवरण के लिए 'तिलकमंजरी', 'श्रृंगारमंजरी कथा' तथा धार से प्राप्त राउलवेल अभिलेख हमारे सहायक हैं।[28] सामान्यतः शरीर के ऊपरी तथा निचले हिस्से को ढ़कने के लिए उतरीय तथा अधोवसन ही प्रयुक्त होते थे। पुरुष पगड़ी धारण करते थे।[29] स्त्रियां साड़ी पहनती थी। जिनका परिवर्तन मौसम के हिसाब से होता था। वे गर्मियों में कपर्सक नामक पदार्थ का प्रयोग करती थीं। वे चाली, विभिन्न रंगों के घाघरा पहनती थीं। कांचु या कय्यु[30] जो केवल स्तनों को ढकता था। उस काल में काफी प्रचलित थी। शरद ऋतु में ऊन से निर्मित वस्त्र धारण करती थी।[31] धनी स्त्रियां मुल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित रहती थीं श्रीमन्त लोग वस्त्रों के लिए रेशम का प्रयोग करते थे। चीन का रेशम अत्यन्त लोकप्रिय था। मालवा में प्रायः श्वेत रंग के वस्त्रों का प्रयोग होता था तथा सभी मांगलिक अवसरों परश्वेत वस्त्र ही धारण किये जाते थे। स्त्रियां हरे व लाल रंग के वस्त्र धारण करती थी।

स्त्रियां लम्बे बाल रखती थीं, जो प्रायः लटों तथा जुड़े के रूप में संवारे जाते थे। इनको सदा ऋतु के अनुरूप ताजे सुगन्धित पुष्पों से सजाती थी। कानों के आभुषणों में ताण्डक, दण्डपत्र, कय्यडि, कुण्डल, श्रवणपाश, कर्णपुर, करडिम्ब तथा कांचड़ि होते थे। कभी–कभी ताड़वृक्ष के पत्ते अथवा उनसे मिलते–जुलते आभूषण भी कानों में धारण करने हेतु बनाए जाते थे।[32]

गले में धारण करने हेतु अनेक प्रकार के हारों का उपयोग किया जाता था। इनमें जालकण्ठी, सामान्य हार, एकावली हार, सोनजाल, चंचल हार होते थे, जिसका लटकन नाभि तक जाता था। रत्न जड़ित हार तथा अनेक प्रकार के पुष्पाहार भी थे जो स्त्रियों के गलों को सजाये रहते थे। निर्धन लोग बुने हुए धागों के हारों से ही संतुष्ट हो जाते थे। हमें गण्ठिया तगौ, तीन लड़ीयों वाली मालाएं तथा सादे सुती धागे के हारों के विवरण भी मिलते हैं।

हाथों व भुजाओं में कलय, ककंण, केयु, चण्डहाईरीठा, माठी तथा स्वर्ण कंगन धारण किये जाते थे। स्त्रियां उंगलियों में मुलयवान रंगीन नगों से जड़ी हुई अंगूठियां धारण करती थी। पद्यरागमणि, झुर्मिका नामक आभूषण पांव में पहना जाता था। स्त्रियां पांव में पाहसियों से सजाए रखती थीं जो लगातार घुंघरूओं की आवाज से गुंजायमान रहते थे। इसी प्रकार कठिबन्ध पर मणक्य वलय नामक आभूषण धारण किया जाता था।

स्त्रियां चन्दनराज, कर्पुर, कुमकुम तथा अपने वक्षस्थल पर रोध्रपुष्पराज लगाती थीं, वे अपनी हथेलियों पर रंग लगाती थी। स्त्रियां माथे पर लाल रंग का टीका लगाती थी। आंखों में काजल तथा कभी–कभी बालों को भी रंगती थी। ओठों तथा दातों को रंगने के लिए ताम्बुल का प्रयोग किया जाता था। सुगन्धित तेल तथा इत्र स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता था, सभी लोग विभिन्न प्रकार के आभूषणों तथा मुल्यवान रंग बिरंगे सुन्दर वस्त्रों का उपयोग मुक्त हस्त से करते थे।[33]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परमार कालीन स्त्रीयों का जीवन मिलाजुला ही था। तात्कालीन साहित्य और अभिलेखिय साक्ष्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इस काल में राजपरिवारों, सम्पन्न घरानों कि स्त्रियों तथा जन साधारण की स्त्रियों के रहन–सहन में काफी अन्तर था। समकालीन साक्ष्यों में सभ्रान्त समाज की स्त्रियों

के बारे में ज्यादा प्रकाश डाला गया है जबकि साधारण वर्ग की स्त्रियों की दशा के बारे में ज्यादा उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त इस काल में समाज में बहुत सी बुराईयां प्रचलित थीं जैसे सती प्रथा, बहुविवाह, वैश्यावृत्ति, बाल–विवाह इत्यादि। इनके कारण स्त्रियों को काफी कष्ट उठाना पड़ता था। अलबेरूनी ने कहा भी है कि स्त्री का पति मर जाता था तो उसके पास दो मार्ग थे एक या तो वह अपने पति के साथ चिता में जल जाए या फिर विधवा के रूप में सफेद वस्त्र धारण करके नरकीय जीवन व्यतीत करे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस समय स्त्रियों की दशा ज्यादा ठीक नहीं थी।

संदर्भ

1. एपि. इण्डि, जिल्द–9, पृ. 12–15
2. भाटिया, प्रतिपाल
3. शृंगारमंजरी कथा, पृ.सं. 85
4. उपमितिभव प्रपंचकहा, सम्पादन, पहिर्सन एव याकोबी, कलकत्ता, 1909, पृ.सं. 698
5. कथासरितासागर, श्लोक–28, पृ.सं. 6
6. इण्डि. ऐटी., जिल्द–2, पृ.सं. 221–222
7. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ.सं. 45
8. शर्मा बी.एन., पृ.सं. 73
9. भाटिया, प्रतिपाल, पृ.सं. 73
10. समरैच्छकहा, हरिभद्र सूरी, सम्पादन ए.एच. याकोबी, कलकत्ता, 1936, पृ.सं. 93–101
11. द्वयाश्रय महाकाव्य, हेमचन्द्र, सम्पादन ए.वी. कथवते, भाग–7, श्लोक 66, 74, मुम्बई, 1915
12. तिलकमंजरी, पृ.सं. 103–104
13. एपि.इण्डि., जिल्द–2, पृ.सं. 7
14. वही, जिल्द–22, पृ.सं. 69
15. वही, जिल्द–5, पृ.सं. 53
16. अलबेरूनी, सचऊ, भाग–1, पृ.सं. 154
17. तिलकमंजरी, पृ.सं. 52
18. शर्म बी.एन., पूर्वोक्त, पृ.सं. 62–63
19. कुवलयमाला, पृ.सं. 54
20. शर्मा बी.एन., पूर्वोक्त, पृ.सं. 258
21. एपि.इण्डि., जिल्द–9, पृ.सं. 12–15
22. तिलकमंजरी, पृ.सं. 156
23. शृंगारमंजरी कथा, पृ.सं. 85
24. काणे, पी.वी., 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्री', भाग–1, पृ.सं. 627
25. भाटिया, प्रतिपाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 286–87
26. इण्डि.एंटी, जिल्द–29, पृ.सं. 351
27. समरेचकला, पृ. 62, 561
28. प्रिसं ऑफ वेल्स म्युजियम, अभिलेख, भारतीय विद्या, भाग–1, पृ.सं. 130–146
29. तिलकमंजरी, पृ.सं. 130
30. प्रि.वे.म्यु., भाग–1, पृ. 49
31. शृंगारमंजरी कथा, पृ. 73
32. प्रि.वे.म्यु., भाग–1, पृ. 68
33. शृंगारमंजरी कथा, क्रमांक 9, अशोकवती का विवरण